Chapter एक

मनु की पुत्रियों की वंशावली

मैत्रेय उवाच
मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ।
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय मुनि ने कहा; मनोः तु—स्वायंभुव मनु का; शतरूपायाम्—उसकी पत्नी शतरूपा से; तिस्रः—तीन; कन्याः च—कन्याएँ भी; जज्ञिरे—जन्म लिया; आकूतिः—आकूति नामक; देवहूतिः—देवहूति नामक; च—तथा:; प्रसूतिः—प्रसूति नामक; इति—इस प्रकार; विश्रुताः—विख्यात।

श्रीमैत्रेय ने कहा : स्वायंभुव मनु की पत्नी शतरूपा से तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं जिनके नाम आकूति, देवहूति तथा प्रसूति थे।

तात्पर्य : सर्वप्रथम मैं अपने गुरू, ॐ विष्णुपाद श्री श्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद को नमस्कार करता हूँ जिनके आदेश से मैं श्रीमद्भागवत के भक्तिवेदान्त भाष्य के लेखन की ओर उन्मुख हुआ हूँ, जो अपने में एक महान् कार्य है। उनकी कृपा से तीन स्कन्ध समाप्त हो चुके हैं और मैं चौथे स्कन्ध को प्रारम्भ करने जा रहा हूँ। मैं भगवान् चैतन्य को सादर नमस्कार करता हूँ जिन्होंने पाँच सौ वर्ष पूर्व भागवत धर्म के इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन का शुभारम्भ किया। उन्हीं के माध्यम से मैं छहों गोस्वामियों को और तब दिव्य युगल राधा तथा कृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जो वृन्दावन में गोपों एवं व्रजभूमि की गोपिकाओं के साथ निरन्तर विहार करते हैं। मैं समस्त भक्तों तथा परमेश्वर के समस्त सेवकों को सादर नमस्कार करता हूँ।

श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में ३१ अध्याय हैं और इन समस्त अध्यायों में ब्रह्मा तथा मनुओं द्वारा की गई गौण सृष्टि का वर्णन हुआ है। परमेश्वर स्वयं अपनी भौतिक शक्ति को क्रियाशील बनाकर वास्तविक सृष्टि करते हैं और तब ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा उनके आदेश से विभिन्न लोकों तथा उनके वासियों को उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं और मनु जैसी अपनी सन्तान तथा जीवों के अन्य जनकों के द्वारा जनसंख्या की वृद्धि करते हैं, जो परमेश्वर के आदेश से निरन्तर कार्यशील रहते हैं। चतुर्थ स्कन्ध के प्रथम अध्याय में स्वायंभुव मनु की तीन पुत्रियों तथा उनके वंशजों का वर्णन है। अगले छह अध्यायों में राजा दक्ष द्वारा यज्ञ किये जाने और उसके विध्वंस किए जाने का वर्णन है।

तत्पश्चात् पाँच अध्यायों में महाराज ध्रुव के चरित्र का वर्णन हुआ है। फिर अगले ग्यारह अध्यायों में राजा पृथु का चरित्र तथा अन्य आठ अध्यायों में प्रचेता राजाओं के कार्यकलापों का वर्णन हुआ है।

जैसाकि इस अध्याय के प्रथम श्लोक में कहा गया है, स्वायंभुव मनु के तीन कन्याएँ थीं, जिनके नाम थे आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। इन तीनों पुत्रियों में से देवहूति का वृत्तान्त उनके पति कर्दम मुनि तथा उनके पुत्र कपिल मुनि के समेत पहले ही दिया जा चुका है। इस अध्याय में प्रथम पुत्री आकूति के वंश का विशेष रूप से वर्णन किया जाएगा। स्वायंभुव मनु ब्रह्मा के पुत्र थे। ब्रह्मा के अन्य कई पुत्र थे, किन्तु मनु का विशेष उल्लेख सबसे पहले इसलिए होता है, क्योंकि वे भगवान् के परम भक्त थे। इस श्लोक में '*च*' शब्द भी आया है, जो यह सूचित करता है कि स्वायंभुव मनु के इन तीन पुत्रियों के अतिरिक्त दो पुत्र भी थे।

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः ।
पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

आकूतिम्—आकूति; रुचये—परम साधु रुचि को; प्रादात्—प्रदान किया; अपि—यद्यपि; भ्रातृ-मतीम्—भाई वाली कन्या; नृपः—राजा; पुत्रिका—पुत्री से प्राप्त पुत्र को ग्रहण करना; धर्मम्—धार्मिक कृत्य; आश्रित्य—शरण में जाकर; शतरूपा—स्वायंभुव मनु की पत्नी के द्वारा; अनुमोदितः—स्वीकृत।

आकूति के दो भाई थे तो भी राजा स्वायंभुव मनु ने इसे प्रजापति रुचि को इस शर्त पर ब्याहा था कि उससे, जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मनु को पुत्र रूप में लौटा दिया जाएगा। उसने अपनी पत्नी शतरूपा के परामर्श से ऐसा किया था।

तात्पर्य : कभी कभी निःसन्तान व्यक्ति अपनी पुत्री को इस शर्त के साथ उसके पति को देता है कि वह उसे नाती लौटा दे जिसे वह पुत्र रूप में ग्रहण करके अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना दे। यह *पुत्रिका-धर्म* कहलाता है, जिसका अर्थ होता है कि अपनी पत्नी से कोई पुत्र न होने पर भी धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा वह पुत्र प्राप्त कर सकता है। किन्तु यहाँ पर हम मनु के साथ विचित्र बात देखते हैं। अपने दो पुत्रों के होते हुए भी उन्होंने अपनी प्रथम पुत्री का विवाह प्रजापति रुचि के साथ इस शर्त पर किया कि उनकी पुत्री से, जो पुत्र उत्पन्न हो वह उन्हें पुत्र रूप में लौटा दिया जाय। इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि राजा मनु को ज्ञात था कि आकूति के गर्भ से पूर्ण

पुरुषोत्तम भगवान् जन्म लेंगे, अत: अपने दो पुत्र होते हुए भी वे आकूति से उत्पन्न पुत्र विशेष को अपना पुत्र बनाना चाहते थे, क्योंकि वे श्रीभगवान् को अपने पुत्र तथा नाती के रूप में चाह रहे थे। मनु मानव जाति के विधि-निर्माता हैं और चूँकि उन्होंने स्वयं *पुत्रिका-धर्म* निबाहा, अत: हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि मनुष्य जाति भी इस प्रणाली को ग्रहण कर सकती है। अत:अपना पुत्र होते हुए भी यदि कोई अपनी पुत्री के किसी एक पुत्र को लेना चाहे तो वह इस शर्त के साथ अपनी कन्या का दान कर सकता है। ऐसा श्रील जीव गोस्वामी का मत है।

प्रजापति: स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत् ।
मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥ ३॥

शब्दार्थ

प्रजापति:—जिसे संतान उत्पन्न करने का भार सौंपा गया हो; स:—वह; भगवान्—परम ऐश्वर्यशाली; रुचि:—परम साधु रुचि; तस्याम्—उससे; अजीजनत्—उत्पन्न हुआ; मिथुनम्—जोड़ी, युग्म; ब्रह्म-वर्चस्वी—आध्यात्मिक रूप से अत्यन्त शक्तिमान; परमेण—परम बलशाली; समाधिना—समाधि में।.

अपने ब्रह्मज्ञान में परम शक्तिशाली एवं जीवात्माओं के जनक के रूप में नियुक्त (प्रजापति) रुचि को उनकी पत्नी आकूति के गर्भ से एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : *ब्रह्म-वर्चस्वी* शब्द अत्यन्त सार्थक है। रुचि ब्राह्मण थे और वे संयमपूर्वक ब्रह्मकार्यों का पालन करते थे। जैसाकि *भगवद्गीता* में उल्लेख है, ब्रह्म-गुण इस प्रकार हैं—इन्द्रियों का संयम, मन का संयम, अन्त: तथा बाह्य स्वच्छता, आध्यात्मिक तथा भौतिक ज्ञान की उन्नति, सादगी, सत्यता, श्रीभगवान् में श्रद्धा इत्यादि। ऐसे अनेक गुण हैं जिनसे ब्रह्मवादी व्यक्तित्व प्रकट होता है और ऐसा माना जाता है कि रुचि ब्रह्मवादी सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करने वाले थे। इसलिए उन्हें विशेष रूप से *ब्रह्मवर्चस्वी* कहा गया है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ब्राह्मण-जैसा आचरण न करने वाले को वैदिक भाषा में *ब्रह्म-बन्धु* कहा जाता है और उसकी गणना शूद्रों तथा स्त्रियों की कोटि में की जाती है। इस प्रकार हम *भागवत* से यह देखते हैं कि वेदव्यास ने महाभारत की रचना विशेषरूप से *स्त्री-शूद्र-ब्रह्म-बन्धु* के लिए की थी। स्त्री, शूद्र तथा ब्रह्म-बन्धु—ये तीनों वर्ग अल्पज्ञ कहलाते हैं, ये वेदों का अध्ययन नहीं कर पाते, क्योंकि वेद तो उन लोगों के लिए है जिन्होंने ब्रह्म-योग्यता प्राप्त की हो। यह प्रतिबन्ध किसी जाति भेद पर आधारित न होकर योग्यता (पात्रता) पर निर्भर है। बिना ब्रह्म-योग्यता

प्राप्त किए वैदिक साहित्य समझा नहीं जा सकता। अत: यह बड़े ही दुख की बात है कि ऐसे व्यक्ति जिनमें ब्रह्म-योग्यता नहीं हो और, जो प्रामाणिक गुरु द्वारा प्रशिक्षित नहीं हुए होते वे *श्रीमद्भागवत* तथा अन्य पुराणों जैसे वैदिक साहित्य की टीका करते हैं। ऐसे लोग कभी भी इन ग्रन्थों के वास्तविक सन्देश को प्रदान नहीं कर सकते। रुचि प्रथम श्रेणी के ब्राह्मण माने जाते थे इसीलिए उन्हें *ब्रह्म-वर्चस्वी* अर्थात् ब्राह्मण-कौशल में पूर्ण दक्ष कहा गया है।

यस्तयो: पुरुष: साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ।
या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूतानपायिनी ॥ ४॥

शब्दार्थ

य:—जो; तयो:—उन दोनों में से; पुरुष:—नर; साक्षात्—प्रत्यक्ष; विष्णु:—परमेश्वर; यज्ञ—यज्ञ; स्वरूप-धृक्—स्वरूप धारण किये हुए; या—दूसरी; स्त्री—स्त्री; सा—वह; दक्षिणा—दक्षिणा; भूते:—सम्पत्ति की देवी का; अंश-भूता—भिन्नांश होने से; अनपायिनी—कभी न पृथक् होने वाली।

आकूति से उत्पन्न दोनों सन्तानों में से एक अर्थात् बालक तो प्रत्यक्ष पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का अवतार था और उसका नाम था यज्ञ, जो भगवान् विष्णु का ही दूसरा नाम है। बालिका सम्पत्ति की देवी भगवान् विष्णु की प्रिया शाश्वत लक्ष्मी की अंश अवतार थी।

तात्पर्य : सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी भगवान् विष्णु की चिरसंगिनी हैं। यहाँ पर यह बताया गया है कि भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मी, जो चिर-संगी हैं, एकसाथ आकूति के गर्भ से प्रकट हुए। जैसाकि अनेक विद्वानों ने पुष्टि की है विष्णु तथा लक्ष्मी भौतिक सृष्टि से परे हैं (*नारायण: परोऽव्यक्तात्*); अत: उनका यह चिर सम्बन्ध बदला नहीं जा सकता। इसीलिए आगे चल कर आकूति से उत्पन्न यज्ञ ने धन की देवी के साथ विवाह कर लिया।

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्या: पुत्रं विततरोचिषम् ।
स्वायम्भुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

आनिन्ये—ले आये; स्व-गृहम्—अपने घर; पुत्र्या:—पुत्री से उत्पन्न; पुत्रम्—पुत्र; विवत-रोचिषम्—अत्यन्त शक्तिमान; स्वायम्भुव:—स्वायंभुव मनु; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक; युक्त:—साथ; रुचि:—परम साधु रुचि; जग्राह—रखा; दक्षिणाम्—दक्षिणा नामक पुत्री को।

स्वायंभुव मनु परम प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ नामक सुन्दर बालक को अपने घर ले आये और

उनके जामाता रुचि ने पुत्री दक्षिणा को अपने पास रखा।

तात्पर्य : स्वायंभुव मनु यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे कि उनकी पुत्री से एक लड़का तथा एक लड़की उत्पन्न हुए। उन्हें भय था कि उनके द्वारा पुत्र लेने से उनके जामाता रुचि दुखी हो सकते हैं। अत: जब उन्होंने सुना कि उनकी पुत्री ने एक लड़का तथा एक लड़की को जन्म दिया है, तो वे परम प्रफुल्लित हुए। रुचि ने वचन के अनुसार अपना पुत्र स्वायंभुव मनु को दे दिया और कन्या को, जिसका नाम दक्षिणा था, अपने पास रखने का निश्चय किया। भगवान् विष्णु का एक नाम यज्ञ भी है, क्योंकि वे वेदों के स्वामी हैं। यज्ञ नाम *यजुषां पति:* से आया है, जिसका अर्थ है ''समस्त यज्ञों के स्वामी।'' *यजुर्वेद* में यज्ञों के सम्पन्न करने की अनेक विधियाँ दी हुई हैं और इन समस्त यज्ञों के भोक्ता विष्णु भगवान् हैं। अत: *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मण:*—मनुष्य को कर्म करना चाहिए, किन्तु मनुष्य को अपना नियत कर्तव्य 'यज्ञ' अथवा विष्णु के लिए करना चाहिए। यदि मनुष्य श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए कर्म नहीं करता, अथवा भक्ति नहीं करता तो उसके इन कार्यों का प्रतिफल होगा भले ही वह अच्छा हो या बुरा। यदि हमारे कार्य भगवत् इच्छा के अनुरूप नहीं हैं, अथवा यदि हम कृष्णभावना में कार्य नहीं करते तो हम अपने कार्यों के फल के लिए उत्तरदायी होंगे। प्रत्येक प्रकार के कार्य (क्रिया) का फल (प्रतिक्रिया) होता है, किन्तु यदि ये कार्य यज्ञ के लिए किये जाँय तो कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। इस प्रकार यदि कोई मनुष्य यज्ञ अथवा श्रीभगवान् के लिए कार्य करता है, तो वह इस भव-बन्धन में नहीं फँसता, क्योंकि वेदों तथा *भगवद्गीता* में भी इसका उल्लेख है कि जितने भी वेद और वैदिक अनुष्ठान हैं, वे भगवान् कृष्ण को समझने के लिए हैं। मनुष्य को चाहिए कि प्रारम्भ से ही कृष्णभावनाभावित होकर कार्य करे। इससे मनुष्य भौतिक जंजालों की प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो सकेंगे।

तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पति: ।
तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; कामयानाम्—इच्छुक; भगवान्—भगवान् ने; उवाह—विवाह कर लिया; यजुषाम्—समस्त यज्ञों के; पति:—स्वामी; तुष्टायाम्—अपनी पत्नी में अत्यन्त प्रसन्न; तोषम्—अत्यधिक प्रसन्नता; आपन्न:—प्राप्त करके; अजनयत्—जन्म दिया; द्वादश—बारह; आत्मजान्—पुत्रों को।

यज्ञों के स्वामी भगवान् ने बाद में दक्षिणा के साथ विवाह कर लिया, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, को अपने पति रूप में प्राप्त करने के लिए परम इच्छुक थी। उनकी इस पत्नी से उन्हें बारह पुत्र प्राप्त हुए।

तात्पर्य : आदर्श पति-पत्नी की तुलना सामान्य रूप से लक्ष्मी-नारायण से की जाती है, और यह महत्वपूर्ण है कि वे लक्ष्मी-नारायण कहलाते हैं क्योंकि लक्ष्मी-नारायण पत्नी-पति रूप में सदैव सुखी रहते हैं। पत्नी को चाहिए कि वह सदैव अपने पति से सन्तुष्ट रहे और पति को भी पत्नी से सन्तुष्ट रहना चाहिए। पंडित चाणक्य के निति श्लोक *चाणक्य-श्लोक* में कहा गया है कि यदि पति-पत्नी एक दूसरे से सदा सन्तुष्ट रहें तो ऐश्वर्य की देवी उनके यहाँ स्वत: पदार्पण करती है। दूसरे शब्दों में, जहाँ पति तथा पत्नी में कोई मतभिन्नता नहीं है, वहीं लक्ष्मी का वास होता है और अच्छी सन्तान उत्पन्न होती है। वैदिक सभ्यता के अनुसार सामान्य रूप से पत्नी को प्रत्येक दशा में संतुष्ट रहने का प्रशिक्षण मिलता है और पति से अपेक्षा की जाती है कि वह पर्याप्त भोजन, वस्त्र और आभूषणों से पत्नी को संतुष्ट रखे। जब वे परस्पर व्यवहार से इस प्रकार प्रसन्न रहते हैं तब उन्हें अच्छी संतानें प्राप्त होती हैं। इस तरह से सम्पूर्ण विश्व में शान्ति आ सकती है। किन्तु दुर्भाग्य से इस कलियुग में आदर्श पतियों और पत्नियों का अभाव है। इसलिए अनुपेक्षित संतानें पैदा होती हैं और आज के समय में संसार में न शान्ति है, न सम्पन्नता

तोष: प्रतोष: सन्तोषो भद्र: शान्तिरिडस्पति: ।
इध्म: कविर्विभु: स्वह्न: सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तोष:—तोष; प्रतोष:—प्रतोष; सन्तोष:—संतोष; भद्र:—भद्र; शान्ति:—शान्ति; इडस्पति:—इडस्पति; इध्म:—इध्म; कवि:—कवि; विभु:—विभु; स्वह्न:—स्वह्न; सुदेव:—सुदेव; रोचन:—रोचन; द्वि-षट्—बारह।

यज्ञ तथा दक्षिणा के बारह पुत्रों के नाम थे—तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव तथा रोचन।

तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायम्भुवान्तरे ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञ: सुरगणेश्वर: ॥ ८॥

शब्दार्थ

तुषिताः—तुषितों की कोटि; नाम—नाम वाले; ते—सभी; देवाः—देवता; आसन्—हुए; स्वायम्भुव—मनु का नाम; अन्तरे—उस काल में; मरीचि-मिश्राः—मरीचि इत्यादि; ऋषयः—ऋषिगण, साधुगण; यज्ञः—भगवान् विष्णु का अवतार; सुर-गण-ईश्वरः—देवताओं के राजा।

स्वायंभुव मनु के काल में ही ये सभी पुत्र देवता हो गये जिन्हें संयुक्त रूप में तुषित कहा जाता है। मरीचि सप्तर्षियों के प्रधान बन गये और यज्ञ देवताओं के राजा इन्द्र बन गये।

तात्पर्य : स्वायंभुव के जीवन काल (मन्वतर) में तुषित नामक देवताओं से, मरीचि इत्यादि सप्तर्षियों से तथा देवताओं के राजा यज्ञ की सन्तानों से छह प्रकार की जीवात्माएँ उत्पन्न हुईं और इन सबों ने अपनी संतानों के विस्तार से विश्व को जीवात्माओं से परिपूर्ण करने की भगवान् की आज्ञा का पालन किया। ये छह प्रकार की जीवात्माएँ हैं—मनु, देव, मनु-पुत्र, अंशावतार, सुरेश्वर तथा ऋषि। यज्ञ पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के अवतार होने के कारण देवताओं के नायक इन्द्र बने।

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ।
तत्पुत्रपौत्रनप्तृणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

प्रियव्रत—प्रियव्रत; उत्तानपादौ—उत्तानपाद; मनु-पुत्रौ—मनु के दो पुत्र; महा-ओजसौ—महान् ओजस्वी, शक्तिशाली; तत्—उनके; पुत्र—पुत्र; पौत्र—पोता; नप्तृणाम्—नाती; अनुवृत्तम्—अनुगमन करते हुए; तत्-अन्तरम्—उस मनु-काल (मन्वतर) में।

स्वायंभुव मनु के दोनों पुत्र, प्रियव्रत तथा उत्तानपाद अत्यन्त शक्तिशाली राजा हुए और उनके पुत्र तथा पौत्र उस काल में तीनों लोकों में फैल गये।

देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ।
तत्सम्बन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देवहूतिम्—देवहूति; अदात्—प्रदान की गई; तात—हे प्रिय पुत्र; कर्दमाय—कर्दम मुनि को; आत्मजाम्—कन्या; मनुः—स्वायंभुव मनु; तत्-सम्बन्धि—उस सम्बन्ध में; श्रुत-प्रायम्—प्रायः पूरी तरह सुना गया; भवता—तुम्हारे द्वारा; गदतः—कहा गया; मम—मेरे द्वारा।

हे पुत्र, स्वायंभुव मनु ने अपनी परम प्रिय कन्या देवहूति को कर्दम मुनि को प्रदान किया। मैं इनके सम्बन्ध में तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ और तुम उनके विषय में प्रायः पूरी तरह सुन चुके हो।

दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनु: ।
प्रायच्छद्यत्कृत: सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दक्षाय—प्रजापति दक्ष को; ब्रह्म-पुत्राय—ब्रह्मा के पुत्र; प्रसूतिम्—प्रसूति को; भगवान्—महापुरुष; मनु:—स्वायंभुव मनु; प्रायच्छत्—प्रदान किया; यत्-कृत:—जिनके द्वारा रचित; सर्ग:—सृष्टि; त्रि-लोक्याम्—तीनो लोकों में; वितत:—विस्तार किया हुआ; महान्—अत्यधिक।

स्वायंभुव मनु ने प्रसूति नामक अपनी कन्या ब्रह्मा के पुत्र दक्ष को दे दी, जो प्रजापतियों में से एक थे। दक्ष के वंशज तीनों लोकों में फैले हुए हैं।

या: कर्दमसुता: प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नय: ।
तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

या:—जो; कर्दम-सुता:—कर्दम की कन्याएँ; प्रोक्ता:—उल्लेख किया गया; नव—नौ; ब्रह्म-ऋषि—आध्यात्मिक ज्ञान वाले ऋषियों की; पत्नय:—पत्नियाँ; तासाम्—उनकी; प्रसूति-प्रसवम्—पुत्रों तथा पौत्रों की पीढ़ियाँ; प्रोच्यमानम्—वर्णित होकर; निबोध—समझने का प्रयत्न करो; मे—मुझसे।

मैं तुम्हें कर्दम मुनि की नवों कन्याओं के विषय में पहले ही बतला चुका हूँ कि वे नौ विभिन्न ऋषियों को सौंप दी गई थीं। अब मैं इन नवों कन्याओं की सन्तानों का वर्णन करूँगा। तुम मुझसे उनके विषय में सुनो।

तात्पर्य : तीसरे स्कन्ध में बताया जा चुका है कि देवहूति से कदर्म को किस प्रकार नौ पुत्रियाँ प्राप्त हुईं और बाद में वे किस प्रकार मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ जैसे मुनियों को सौंप दी गईं।

पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ।
कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पत्नी—पत्नी; मरीचे:—मरीचि नामक साधु से की; तु—भी; कला—कला नाम की; सुषुवे—जन्म दिया; कर्दम-आत्मजा—कर्दम मुनि की कन्या; कश्यपम्—कश्यप नाम का; पूर्णिमानम् च—तथा पूर्णिमा नाम की; ययो:—जिनसे; आपूरितम्—भर गये, सर्वत्र फैल गये; जगत्—संसार।

कर्दम मुनि की पुत्री कला का ब्याह मरीचि से हुआ जिससे दो सन्तानें हुईं जिनके नाम थे कश्यप तथा पूर्णिमा। इनकी सन्तानें सारे विश्व में फैल गईं।

पूर्णिमासूत विरजं विश्वगं च परन्तप ।
देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याभूत्सरिद्दिवः ॥ १४॥

शब्दार्थ

पूर्णिमा—पूर्णिमा ने; असूत—उत्पन्न किया; विरजम्—विरज नामक पुत्र; विश्वगम् च—तथा विश्वग नामक; परम्-तप—शत्रुओं का संहार करने वाले; देवकुल्याम्—देवकुल्या नामक पुत्री; हरेः—श्रीभगवान् के; पाद-शौचात्—चरणकमल को धोने वाले जल से; या—वह; अभूत्—हुई; सरित् दिवः—गंगा के तटों के अन्तर्गत दिव्य जल।

हे विदुर, कश्यप तथा पूर्णिमा नामक दो सन्तानों में से पूर्णिमा के तीन सन्तानें उत्पन्न हुईं जिनके नाम विरज, विश्वग तथा देवकुल्या थे। इन तीनों में से देवकुल्या श्रीभगवान् के चरणकमल को धोने वाला जल थी, जो बाद में स्वर्गलोक की गंगा में बदल गई।

तात्पर्य : कश्यप तथा पूर्णिमा इन दो में से यहाँ पर पूर्णिमा के वंशजों का वर्णन है। इनका विस्तृत वर्णन छठे स्कंध में दिया जाएगा। यहाँ पर यह ज्ञात होता है कि देवकुल्या गंगा नदी की प्रधान विग्रह है, जो स्वर्ग लोक से इस लोक में अवतरित होती है और पवित्र मानी जाती हैं, क्योंकि वह श्रीभगवान् हरि के चरणकमलों का स्पर्श करती है।

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ।
दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान् ॥ १५॥

शब्दार्थ

अत्रेः—अत्रि मुनि की; पत्नी—पत्नी; अनसूया—अनुसूया ने; त्रीन्—तीन; जज्ञे—उत्पन्न किया; सु-यशसः—अत्यन्त प्रसिद्ध; सुतान्—पुत्रों को; दत्तम्—दत्तात्रेय; दुर्वाससम्—दुर्वासा; सोमम्—सोम (चन्द्रदेव); आत्म—परमात्मा; ईश—शिवजी; ब्रह्म—ब्रह्माजी; सम्भवान्—के अवतार।

अत्रि मुनि की पत्नी अनसूया ने तीन सुप्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न किये। ये हैं—सोम, दत्तात्रेय तथा दुर्वासा, जो भगवान् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के अंशावतार थे। सोम ब्रह्मा के, दत्तात्रेय भगवान् विष्णु के तथा दुर्वासा शिवजी के अंश प्रतिनिधिस्वरूप थे।

तात्पर्य : इस श्लोक में *आत्म-ईश-ब्रह्म-सम्भवान्* शब्द आये हैं। *आत्म* का अर्थ है परमात्मा या विष्णु; *ईश* का अर्थ है शिव तथा ब्रह्म का अर्थ है *चतुर्मुख* ब्रह्मा। अनसूया के तीनों पुत्र दत्तात्रेय, दुर्वासा तथा सोम इन तीनों देवताओं के आंशिक प्रतिनिधि थे। *आत्म* देवताओं या जीवात्माओं की कोटि में परिगणित नहीं होता, क्योंकि वह विष्णु है इसलिए उसे *विभिन्नांश भूतानाम्* कहा गया है। परमात्मा विष्णु समस्त जीवात्माओं के बीज-प्रदायक जनक हैं जिनमें ब्रह्मा तथा शिव भी सम्मिलित

हैं। *आत्म* का एक अर्थ और भी माना जा सकता है, जो इस प्रकार है : वह तत्त्व जो प्रत्येक आत्मा में परमात्मा है या कि सबों की आत्मा है, वही दत्तात्रेय के रूप में प्रकट हुआ क्योंकि यहाँ पर अंश शब्द का प्रयोग हुआ है।

भगवद्गीता में प्रत्येक आत्मा (जीव) को श्रीभगवान् या परमात्मा का अंश रूप कहा गया है, अत: यह क्यों न मान लिया जाय कि दत्तात्रेय भी उन्हीं अंशों में से एक थे? यहाँ पर शिव तथा ब्रह्मा को भी अंश माना गया है, अत: इन सबों को सामान्य जीव क्यों न मान लिया जाय? इसका उत्तर यही है कि विष्णु तथा सामान्य जीवात्माओं के प्राकट्य निश्चित रूप से परमेश्वर के अंश हैं और इनमें से कोई भी उनके तुल्य नहीं है, किंतु इन अंशों में कई कोटियाँ हैं। *वराह पुराण* में अत्यंत सुन्दर ढंग से बताया गया है कि कुछ अंश *स्वांश* है और कुछ *विभिन्नांश।* विभिन्नांश *जीव* कहलाते हैं और स्वांश विष्णु की कोटि में आते हैं। *जीव* अर्थात् विभिन्नांश कोटि में भी अनेक श्रेणियाँ हैं। इसकी व्याख्या *विष्णु पुराण* में की गई है जहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि परमेश्वर के पृथक्-पृथक् अंश माया द्वारा आच्छादित हैं। ऐसे व्यक्तिगत अंश जो भगवान् की सृष्टि में कहीं भी विचरण कर सकते हों *सर्वगत* कहलाते हैं और भव-यातनाएँ झेलते हैं। वे विभिन्न गुणों के वशीभूत होकर अपने-अपने कर्मों के अनुसार अज्ञान के आवरण से मुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ, सतोगुणी जन को कम कष्ट झेलने होते हैं और तमोगुणी को अधिक। किन्तु शुद्ध कृष्णभावनामृत (भक्ति) तो प्रत्येक जीवात्मा का जन्मसिद्ध अधिकार है क्योंकि वह परमेश्वर का अंश है। भगवत् चेतना भी अंशस्वरूप है और जिस अनुपात से यह चेतना भौतिक मल से रहित होती है उसी के अनुसार जीवात्माएँ भिन्न-भिन्न स्थान ग्रहण करती हैं। *वेदान्त सूत्र* में विभिन्न कोटि की जीवात्माओं की तुलना भिन्न-भिन्न प्रखरता वाले दीपों से की गई है। उदाहरणार्थ, कुछ बिजली के बल्ब एक हजार कैंडल शक्ति के होते हैं, तो कुछ पाँच सौ के, इन कुछ पचास के, किन्तु इन समस्त बल्बों से प्रकाश होता है। यद्यपि इन सभी बल्बों में प्रकाश विद्यमान रहता है, किन्तु इनमें प्रकाश की कोटि (प्रखरता) भिन्न-भिन्न होती है। इसी प्रकार ब्रह्म का श्रेणीकरण है। विष्णु के विभिन्न रूपों में परमेश्वर के विष्णु *स्वांश* प्रसार दीपों के तुल्य हैं, शिवजी भी एक दीप के तुल्य हैं, परन्तु शत-प्रति-शत प्रकाश तो श्रीकृष्ण ही हैं। *विष्णु तत्त्व* में ९४, *शिव-तत्त्व* में ८४, *ब्रह्मा*

में ७८ तथा अन्य जीवात्माओं में भी ब्रह्मा के ही समान ७८ प्रतिशत प्रकाश रहता है, किन्तु जब जीवात्माएँ बद्ध होती हैं, तो यह प्रकाश और भी मन्द रहता है। निस्सन्देह ब्रह्म की कई कोटियाँ हैं। इस तथ्य को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। अत: *आत्मेश-ब्रह्मसम्भवान्* शब्द सूचित करते हैं कि दत्तात्रेय विष्णु के प्रत्यक्ष अंशस्वरूप थे, जबकि दुर्वासा तथा सोम क्रमश: शिव तथा ब्रह्मा के अंश थे।

विदुर उवाच

अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठा: स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतव: ।
किञ्चिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

विदुर: उवाच—श्रीविदुर ने कहा; अत्रे: गृहे—अत्रि के घर में; सुर-श्रेष्ठा:—प्रमुख देवता; स्थिति—पालन; उत्पत्ति—सृष्टि; अन्त—संहार; हेतव:—कारण; किञ्चित्—कुछ; चिकीर्षव:—करने के इच्छुक; जाता:—प्रकट हुए; एतत्—यह; आख्याहि—कहो, बताओ; मे—मुझको; गुरो—मेरे गुरु!.

यह सुनकर विदुर ने मैत्रेय से पूछा : हे गुरु, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव जो सम्पूर्ण सृष्टि के स्त्रष्टा, पालक तथा संहारक हैं, अत्रि मुनि की पत्नी से किस प्रकार उत्पन्न हुए?

तात्पर्य : विदुर की जिज्ञासा बिल्कुल उचित थी, क्योंकि उन्हें लगा कि जब परमात्मा, ब्रह्मा तथा शिव अत्रिमुनि की पत्नी अनसूया के शरीर से प्रकट हुए हैं, तो इसका कोई महान् उद्देश्य होगा। अन्यथा वे इस प्रकार क्यों उत्पन्न होते?

मैत्रेय उवाच

ब्रह्मणा चोदित: सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वर: ।
सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थित: ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेय: उवाच—श्रीमैत्रेय ऋषि ने कहा; ब्रह्मणा—भगवान् ब्रह्मा द्वारा; चोदित:—प्रेरित होकर; सृष्टौ—सृष्टि हेतु; अत्रि:—अत्रि; ब्रह्म-विदाम्—आध्यात्मिक ज्ञान में पारंगत पुरुषों के; वर:—श्रेष्ठ, मुख्य; सह—साथ; पत्न्या—पत्नी के; ययौ—गया; ऋक्षम्—ऋक्ष पर्वत; कुल-अद्रिम्—विशाल पर्वत; तपसि—तपस्या हेतु; स्थित:—रहा।.

मैत्रेय ने कहा : अनसूया से विवाह कर लेने के बाद जब अत्रि मुनि को ब्रह्मा ने वंश चलाने के लिए आदेश दिया तो वे अपनी पत्नी के साथ कठोर तपस्या करने के लिए ऋक्ष नामक पर्वत की घाटी में गये।

तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ।
वार्भिः स्रवद्भिरुद्धुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; प्रसून-स्तबक—पुष्प गुच्छ; पलाश—पलाश के वृक्ष (छिउल); अशोक—अशोक के पेड़; कानने—वनोद्यान में; वार्भिः—जल से; स्रवद्भिः—बहते हुए; उद्धुष्टे—ध्वनि में; निर्विन्ध्यायाः—निर्विन्ध्या नदी की; समन्ततः—सर्वत्र।

उस पर्वत घाटी में निर्विन्ध्या नामक नदी बहती है। इस नदी के तट पर अनेक अशोक के वृक्ष तथा पलाश पुष्पों से लदे अन्य पौधे हैं। वहाँ झरने से बहते हुए जल की मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती रहती है। वे पति तथा पत्नी ऐसे सुरम्य स्थान में पहुँचे।

प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः ।
अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

प्राणायामेन—प्राणायाम (श्वास रोकने का अभ्यास) के द्वारा; संयम्य—वश में करके; मनः—मन; वर्ष-शतम्—एक सौ वर्ष; मुनिः—मुनि; अतिष्ठत्—वहाँ रहते हुए; एक-पादेन—एक पाँव पर खड़े होकर; निर्द्वन्द्वः—बिना द्वैत के; अनिल—वायु; भोजनः—खाकर।

वहाँ पर मुनि ने योगिक प्राणायाम के द्वारा अपने मन को स्थिर किया और फिर समस्त आसक्ति पर संयम करते हुए बिना भोजन खाए केवल वायु का सेवन करते रहे और सौ वर्षों तक एक पाँव पर खड़े रहे।

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ।
प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

शरणम्—शरण ग्रहण करके; तम्—उसकी; प्रपद्ये—समर्पण करता हूँ; अहम्—मैं; यः—जो; एव—निश्चय ही; जगत्-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी; प्रजाम्—पुत्र; आत्म-समाम्—अपनी तरह का; मह्यम्—मुझको; प्रयच्छतु—प्रदान करें; इति—इस प्रकार; चिन्तयन्—सोचते हुए।

वे मन ही मन सोच रहे थे कि जो सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं और मैं जिनकी शरण में आया हूँ, वे प्रसन्न होकर मुझे अपने ही समान पुत्र प्रदान करें।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि अत्रि मुनि को श्रीभगवान् का विशिष्ट ज्ञान न था। निस्सन्देह, वे इस वैदिक ज्ञान से अनजान रहे होंगे कि श्रीभगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, जो इस जगत की सृष्टि करने वाले हैं, जिनसे प्रत्येक वस्तु उद्भूत है, जो उत्पन्न किये गये संसार का पालन करते हैं और प्रलय के

बाद सारा संसार उन्हीं में विलीन हो जाता है : *यतो वा इमानि भूतानि* (*तैत्तिरीय उपनिषद्* ३.१.१)। वैदिक मंत्रों से हमें श्रीभगवान् के सम्बध में ज्ञान प्राप्त होता है, फलत: अत्रि मुनि ने श्रीभगवान् के ही समान पुत्र की की याचना करते हुए यह जाने बिना कि उनका क्या नाम है, उन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। भगवान् की इस प्रकार की भक्ति, जिसमें भगवान् के नाम का भी पता नहीं रहता, *भगवद्गीता* में वर्णित है, जिसमें भगवान् कहते हैं कि चार प्रकार के पुण्यात्मा मेरे पास मनवांछित फल माँगने आते हैं। अत्रि मुनि भगवान् के ही सदृश पुत्र चाहते थे; अत: वे शुद्ध भक्त नहीं माने जा सकते क्योंकि उनकी एक कामना थी, जो भौतिक थी। यद्यपि वे श्रीभगवान् जैसा पुत्र चाह रहे थे, किन्तु यह इच्छा भौतिक थी, क्योंकि वे श्रीभगवान् को न चाह कर उन्हीं के समान सन्तान चाह रहे थे। यदि उन्होंने श्रीभगवान् को सन्तान रूप में चाहा होता तो वे इस भौतिक इच्छा से मुक्त रहते, क्योंकि तब उन्होंने परम सत्य को चाहा होता, किन्तु उन्हीं के समान पुत्र की कामना करने से यह भौतिक इच्छा ही थी। अत: अत्रि मुनि की गिनती शुद्ध भक्तों में नहीं की जा सकती।

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना ।
निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्न: समीक्ष्य प्रभवस्त्रय: ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तप्यमानम्—तप करते हुए; त्रि-भुवनम्—तीनों लोक; प्राणायाम—श्वास वायु रोकने का अभ्यास; एधसा—ईंधन; अग्निना—अग्नि से; निर्गतेन—निकलता हुआ; मुने:—मुनि का; मूर्ध्न:—शिरो भाग; समीक्ष्य—देखकर; प्रभव: त्रय:—तीनों बड़े देव (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर)।

जब अत्रि मुनि गहन तप-साधना कर रहे थे तो उनके प्राणायाम के कारण उनके शिर से एक प्रज्ज्वलित अग्नि उत्पन्न हुई जिसे तीनों लोकों के तीन प्रमुख देवों ने देखा।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार प्राणायाम की अग्नि मानसिक तोष है। उस अग्नि को परमात्मा विष्णु ने देखा और उन्हीं के माध्यम से ब्रह्मा तथा शिव ने भी देखा। अत्रि मुनि ने अपने प्राणायाम द्वारा परमात्मा अर्थात् जगत् के स्वामी पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है, जगत् के स्वामी तो वासुदेव हैं (*वासुदेव: सर्वम् इति*) और उन्हीं के आदेश पर ब्रह्मा तथा शिव कार्य करते हैं। अत: वासुदेव के आदेश से ही ब्रह्मा तथा शिव ने अत्रि मुनि द्वारा किये जाने वाले कठोर तप को देखा और नीचे आने के लिए प्रमुदित हुए, जैसाकि अगले श्लोक में बताया गया

है।

अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ।
वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

अप्सरः—अप्सराएँ; मुनि—परम साधु; गन्धर्व—गंधर्व लोक के वासी; सिद्ध—सिद्धलोक के वासी; विद्याधर—अन्य देवता; उरगैः—नागलोक के वासी; वितायमान—फैला हुआ; यशसः—यश, ख्याति; तत्—उसके; आश्रम-पदम्—आश्रम; ययुः—गये।

उस समय ये तीनों देव स्वर्गलोक के वासियों, यथा अप्सराओं, गन्धर्वों, सिद्धों, विद्याधरों तथा नागों समेत अत्रि के आश्रम पहुँचे। इस प्रकार वे उस मुनि के आश्रम में प्रविष्ट हुए, जो उनकी तपस्या के कारण विख्यात हो चुका था।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य में यह उपदेश दिया गया हैं कि मनुष्य को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की शरण में जाना चाहिए, जो इस जगत् के स्वामी हैं और इसका सृजन, पालन तथा संहार करने वाले हैं। वे परमात्मा रूप में जाने जाते हैं और जब परमात्मा की उपासना की जाती है, तो अन्य देवता, यथा ब्रह्मा तथा शिव, विष्णु के साथ-साथ प्रकट होते हैं, क्योंकि वे परमेश्वर द्वारा आदेशित, होते हैं।

तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ।
उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तत्—उनका; प्रादुर्भाव—प्राकट्य; संयोग—एकसाथ; विद्योतित—प्रकाशित; मनाः—मन में; मुनिः—मुनि ने; उत्तिष्ठन्—जगाये जाने पर; एक-पादेन—एक ही पाँव से; ददर्श—देखा; विबुध—देवता; ऋषभान्—महापुरुष।

मुनि एक पैर पर खड़े थे, किन्तु उन्होंने ज्योंही देखा कि तीनों देव उनके समक्ष प्रकट हुए हैं, तो वे उन्हें देखकर इतने हर्षित हुए कि अत्यन्त कष्ट होते हुए भी वे एक ही पाँव से उनके निकट पहुँचे।

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ।
वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

प्रणम्य—नमस्कार करके; दण्ड-वत्—दण्ड के समान; भूमौ—पृथ्वी पर; उपतस्थे—गिर पड़े; अर्हण—पूजा की सारी सामग्री; अञ्जलिः—हाथ जोड़ कर; वृष—बैल; हंस—हंस पक्षी; सुपर्ण—गरुड़ पक्षी; स्थान्—स्थित; स्वैः—अपने; स्वैः—अपने; चिह्नैः—चिह्नों; च—तथा; चिह्नितान्—पहचाने जाकर।

तत्पश्चात् उन्होंने उन तीनों देवों की स्तुति की जो अपने-अपने वाहनों—बैल, हंस तथा गरुड़—पर सवार थे, और अपने हाथों में डमरू, कुश तथा चक्र धारण किये थे। मुनि ने भूमि पर गिरकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

तात्पर्य : *दण्ड* अर्थात् 'डंडा' तथा *वत्* का अर्थ है 'समान'। अपने से किसी श्रेष्ठ के समक्ष भूमि पर दण्ड के समान गिरना होता है और इस प्रकार से सम्मान करना *दण्डवत्* कहलाता है। अत्रि मुनि ने तीनों देवों का इसी प्रकार से सम्मान किया। ये देव अपने-अपने वाहनों तथा चिह्नों के द्वारा पहचाने गये। इस सम्बध में यहाँ यह वर्णित है कि भगवान् विष्णु गरुड़ पर आसीन थे और अपने हाथ में चक्र धारण किये थे। ब्रह्मा हंस पर सवार थे और अपने हाथ में कुश नामक घास लिए थे। शिवजी वृषभ पर आसीन थे और अपने हाथ में डमरू लिए थे। अत्रि मुनि ने उन्हें उनके विभिन्न वाहनों तथा चिह्नों से पहचान कर उनकी स्तुति की और सम्मान दिया।

कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् ।
तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कृपा-अवलोकेन—कृपा से देखते हुए; हसत्—हँसते हुए; वदनेन—मुखों वाले; उपलम्भितान्—अत्यन्त प्रसन्न दिखते हुए; तत्—उनके; रोचिषा—तेज से; प्रतिहते—चकाचौंध होकर; निमील्य—मूँदकर; मुनिः—मुनि; अक्षिणी—अपने नेत्र।

अत्रि मुनि यह देखकर अत्यधिक प्रमुदित हुए कि तीनों देव उन पर कृपालु हैं। उनके नेत्र उन देवों के शरीर के तेज से चकाचौंध हो गये, अतः उन्होंने कुछ समय के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

तात्पर्य : चूँकि तीनों देव मुस्करा रहे थे, अतः अत्रि मुनि समझ गये कि वे उन पर कृपावान हैं। उनका जाज्वल्यमान शारीरिक तेज असह्य था, अतः अत्रि ने कुछ समय तक अपनी आँखें बन्द कर लीं।

चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः

श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयस:

अत्रिरुवाच

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानै-
र्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहा:
ते ब्रह्मविष्णुगिरिशा: प्रणतोऽस्म्यहं व-
स्तेभ्य: क एव भवतां म इहोपहूत:

शब्दार्थ

चेत:—हृदय; तत्-प्रवणम्—उनपर टिका कर; युञ्जन्—बनाकर; अस्तावीत्—स्तुति की; संहत-अञ्जलि:—हाथ जोड़ कर; श्लक्ष्णया—भावपूर्ण; सूक्तया—प्रार्थनाएँ; वाचा—शब्द; सर्व-लोक—सारा संसार; गरीयस:—सम्माननीय; अत्रि: उवाच—अत्रि ने कहा; विश्व—ब्रह्माण्ड; उद्भव—सृष्टि; स्थिति—पालन; लयेषु—संहार में; विभज्यमानै:—विभक्त; माया-गुणै:—प्रकृति के बाह्य गुणों से; अनुयुगम्—विभिन्न कल्पों के अनुसार; विगृहीत—धारण करके; देहा:—शरीर; ते—वे; ब्रह्म—ब्रह्माजी; विष्णु—भगवान् विष्णु; गिरिशा:—शिवजी; प्रणत:—झुका, नमित; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; व:—तुम सबको; तेभ्य:—उनसे; क:—कौन; एव—निश्चय ही; भवताम्—आपका; मे—मुझसे; इह—यहाँ; उपहूत:—बुलाया जाकर।

किन्तु पहले से उनका हृदय इन देवों के प्रति आकृष्ट था, अत: जिस-तिस प्रकार उन्होंने होश सँभाला और वे हाथ जोड़ कर ब्रह्माण्ड के प्रमुख अधिष्ठाता देवों की मधुर शब्दों से स्तुति करने लगे। अत्रि मुनि ने कहा : हे ब्रह्मा, हे विष्णु तथा हे शिव, आपने भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों को अंगीकार करके अपने को तीन शरीरों में विभक्त कर लिया है, जैसा कि आप प्रत्येक कल्प में दृश्य जगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार के लिए करते आये हैं। मैं आप तीनों को सादर नमस्कार करता हूँ और मैं जानना चाहता हूँ कि मैने अपनी प्रार्थना में आपमें से किसको बुलाया था?

तात्पर्य : अत्रि मुनि ने *जगदीश्वर* अर्थात् ब्रह्माण्ड के स्वामी का आवाहन किया था। भगवान् सृष्टि के पूर्व विद्यमान रहे होंगे, अन्यथा वे इसके स्वामी (ईश्वर) कैसे बनते? यदि कोई भवन का निर्माण कराता है, तो इससे सूचित होता है कि वह उस भवन-निर्माण के पहले से विद्यमान है। फलत: ब्रह्माण्ड के स्रष्टा परमेश्वर को त्रिगुणातीत होना चाहिए। किन्तु यह ज्ञात है कि विष्णु सत्त्वगुण के, ब्रह्मा रजोगुण के तथा शिव तमोगुण के अध्यक्ष हैं। अत: अत्रि मुनि ने कहा "वह *जगदीश्वर* अवश्य ही आपमें से ही कोई है। किन्तु आप तीनों एकसाथ प्रकट हुए हैं, अत: मैं यह नहीं पहचान पा रहा कि मैंने किसका आवाहन किया था। कृपया मुझे बताएँ कि आपमें से वास्तव में कौन *जगदीश्वर* हैं?" वस्तुत: अत्रि मुनि को भगवान् विष्णु की स्वाभाविक स्थिति के विषय में संदेह था, किन्तु उनका दृढ़ विश्वास था कि जगदीश्वर माया द्वारा उत्पन्न प्राणी नहीं हो सकता। उनका यह प्रश्न कि उन्होंने किसे

बुलाया था यह सूचित करता है कि वे भगवान् की वैधानिक स्थिति के विषय में संशयपूर्ण थे। अत: उन्होंने तीनों से प्रार्थना की, ''कृपया मुझे बताएँ कि जगत का दिव्य स्वामी कौन है?'' वस्तुत:, उनका विश्वास था कि सारे के सारे भगवान् नहीं हो सकते, बल्कि इन तीनों में से एक ही जगदीश्वर हो सकता है।

एको मयेह भगवान्विविधप्रधानै-
श्चित्तीकृत: प्रजननाय कथं नु यूयम् ।
अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरात्
ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एक:—एक; मया—मेरे द्वारा; इह—यहाँ; भगवान्—परम पुरुष; विविध—अनेक; प्रधानै:—साज-सामग्री द्वारा; चित्ती-कृत:—मन में स्थिर किया हुआ; प्रजननाय—सन्तान उत्पत्ति के लिए; कथम्—क्यों; नु—किन्तु; यूयम्—तुम सभी; अत्र—यहाँ; आगता:—प्रकट हुए; तनु-भृताम्—देहधारियों का; मनस:—मन; अपि—यद्यपि; दूरात्—दूर से; ब्रूत—कृपा करके बताएँ; प्रसीदत—मुझ पर कृपालु होकर; महान्—अत्यधिक; इह—यह; विस्मय:—सन्देह; मे—मेरा।

मैंने तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के ही समान पुत्र की इच्छा से उन्हीं का आवाहन किया था और मैंने उन्हीं का चिन्तन किया था। यद्यपि वे मनुष्य की मानसिक कल्पना से परे हैं, किन्तु आप तीनों यहाँ पर उपस्थित हुए हैं। कृपया मुझे बताएँ कि आप यहाँ कैसे आए हैं, क्योंकि मैं इसके विषय में अत्यधिक मोहग्रस्त हूँ।

तात्पर्य : अत्रि मुनि का पूरा-पूरा विश्वास था कि श्रीभगवान् ही जगदीश्वर हैं, अत: उन्होंने एक परमेश्वर के लिए प्रार्थना की। अत: उन्हें विस्मय हो रहा था कि तीनों किस प्रकार प्रकट हुए हैं?

मैत्रेय उवाच
इति तस्य वच: श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभा: ।
प्रत्याहु: श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेय: उवाच—ऋषि मैत्रेय ने कहा; इति—इस प्रकार; तस्य—उसके; वच:—शब्द; श्रुत्वा—सुनकर; त्रय: ते—वे तीनों; विबुध—देवता; ऋषभा:—प्रमुख; प्रत्याहु:—उत्तर दिया; श्लक्ष्णया—विनीत; वाचा—वाणी; प्रहस्य—मुस्कराकर; तम्—उसको; ऋषिम्—ऋषि; प्रभो—हे शक्तिमान।

मैत्रेय महा-मुनि ने कहा : अत्रि मुनि को इस प्रकार बोलते हुए सुनकर तीनों महान् देव मुस्कराए और उन्होंने मृदु वाणी में इस प्रकार उत्तर दिया।

देवा ऊचुः
यथा कृतस्ते सङ्कल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ।
सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

देवाः ऊचुः—देवताओं ने उत्तर दिया; यथा—जैसा; कृतः—किया हुआ; ते—तुम्हारे द्वारा; सङ्कल्पः—निश्चय, संकल्प; भाव्यम्—होना चाहिए; तेन एव—उससे; न अन्यथा—और कुछ नहीं, विपरीत नहीं; सत्-सङ्कल्पस्य—जिसका निश्चय डिगता नहीं; ते—तुम्हारा; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; यत्—जो; वै—निश्चय ही; ध्यायति—ध्यान धरते हुए; ते—वे सभी; वयम्—हम हैं।

तीनों देवताओं ने अत्रि मुनि से कहा : हे ब्राह्मण, तुम अपने संकल्प में पूर्ण हो, अतः तुमने जो कुछ निश्चित कर रखा है, वही होगा, उससे विपरीत नहीं होगा। हम सब वे ही पुरुष हैं जिनका तुमने ध्यान किया है और इसीलिए हम सब तुम्हारे पास आये हैं।

तात्पर्य : अत्रि मुनि को जगदीश्वर या भगवान् के किसी रूप विशेष का कोई स्पष्ट ज्ञान न था। उन्होंने तो अनायास ही श्रीभगवान् का चिन्तन किया था। महाविष्णु, जिनके श्वास से करोड़ों ब्रह्माण्डों का उद्भव और फिर उन्हीं में लय होता है, जगदीश्वर माने जा सकते हैं। गर्भोदकशायी विष्णु भी, जिनकी नाभि से कमल प्रकट हुआ जो ब्रह्मा का जन्मस्थल है, जगदीश्वर माने जा सकते हैं। इसी प्रकार समस्त जीवात्माओं के परम-आत्मा स्वरूप क्षीरोदकशायी विष्णु भी जगदीश्वर कहे जा सकते हैं। फिर क्षीरोदकशायी विष्णु की आज्ञा से इस ब्रह्माण्ड में विष्णु रूपों को, यथा ब्रह्मा तथा शिव को भी जगदीश्वर माना जा सकता है।

विष्णु जगदीश्वर हैं क्योंकि वे जगत्पालक हैं। इसी तरह ब्रह्मा विभिन्न लोकों तथा जीवों की सृष्टि करने के कारण जगदीश्वर हैं। अथवा शिवजी, जो अन्त में इस ब्रह्माण्ड का संहार करते हैं, जगदीश्वर माने जा सकते हैं। अतः अत्रि द्वारा किसी विशेष रूप का उल्लेख न किये जाने से उनके चाहने पर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—तीनों—उनके समक्ष प्रकट हुए और कहा, "चूँकि तुमने जगत के स्वामी श्रीभगवान् के ही समान पुत्र प्राप्त करने के विषय में चिन्तन किया था, इसलिए तुम्हारा संकल्प पूरा होगा।" दूसरे शब्दों में, मनुष्य की भक्ति की शक्ति के अनुसार ही उसका संकल्प पूरा होता है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.२५) में कहा गया है—*यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।* जो जिस विशेष देवता पर आसक्त है, वह उसी के धाम को जाता है। यदि कोई पितरों पर आसक्ति रखता है, तो

वह पितृलोक जाता है; इसी प्रकार यदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण पर किसी की आसक्ति है, तो वह भगवान् कृष्ण के धाम जाता है। अत्रि मुनि को जगदीश्वर का कोई स्पष्ट ज्ञान न था अत: उनके समक्ष तीनों प्रमुख देव उपस्थित हुए, जो जगत के तीनों गुणविभागों के स्वामी हैं। अब पुत्र के लिए संकल्प-शक्ति के अनुसार ही उनकी इच्छा भगवत् कृपा से पूरी होनी है।

अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुता: ।
भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्त्रप्स्यन्ति च ते यश: ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

अथ—अत:; अस्मत्—हमारे; अंश-भूता:—विभिन्नांश; ते—तुम्हारा; आत्मजा:—पुत्र; लोक-विश्रुता:—संसार प्रसिद्ध; भवितार:—भविष्य में उत्पन्न होंगे; अङ्ग—हे मुनि; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; विस्त्रप्स्यन्ति—फैलाएँगे; च—भी; ते—तुम्हारी; यश:—यश।

हे मुनिवर, हमारी शक्ति के अंशस्वरूप तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होंगे और हम तुम्हारे कल्याण के कामी हैं, अत: वे पुत्र तुम्हारे यश का संसार-भर में विस्तार करेंगे।

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मु: सुरेश्वरा: ।
सभाजितास्तयो: सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्तत: ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; काम-वरम्—इच्छित वर; दत्त्वा—प्रदान करके; प्रतिजग्मु:—वापस चले गये; सुर-ईश्वरा:—प्रमुख देवता; सभाजिता:—पूजित होकर; तयो:—दोनों के; सम्यक्—पूरी तरह; दम्पत्यो:—पति तथा पत्नी; मिषतो:—देखते ही देखते; तत:—वहाँ से।

इस प्रकार उस युगल के देखते ही देखते तीनों देवता ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर अत्रि मुनि को वर देकर उस स्थान से ओझल हो गये।

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोऽंशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ।
दुर्वासा: शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरस: प्रजा: ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सोम:—चन्द्रलोक का स्वामी; अभूत्—प्रकट हुआ; ब्रह्मण:—ब्राह्मण के; अंशेन—आंशिक विस्तार से; दत्त:—दत्तात्रेय; विष्णो:—विष्णु का; तु—लेकिन; योग-वित्—अत्यन्त शक्तिमान योगी; दुर्वासा:—दुर्वासा; शङ्करस्य अंश:—शिव का आंशिक विस्तार; निबोध—समझने का प्रयत्न करो; अङ्गिरस:—अंगिरा ऋषि की; प्रजा:—सन्ततियों का।

तत्पश्चात् ब्रह्मा के आंशिक विस्तार से सोमदेव उत्पन्न हुए, विष्णु से परम योगी दत्तात्रेय तथा शंकर (शिवजी) से दुर्वासा उत्पन्न हुए। अब तुम मुझसे अंगिरा के अनेक पुत्रों के सम्बन्ध में

सुनो।

श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्त्रोऽसूत कन्यकाः ।
सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥ ३४॥

शब्दार्थ

श्रद्धा—श्रद्धा; तु—लेकिन; अङ्गिरसः—अंगिरा ऋषि की; पत्नी—पत्नी; चतस्त्रः—चार; असूत—जन्म दिया; कन्यकाः—कन्याएँ; सिनीवाली—सिनीवाली; कुहूः—कुहू; राका—राका; चतुर्थी—चौथी; अनुमतिः—अनुमति; तथा—भी।

अंगिरा की पत्नी श्रद्धा ने चार कन्याओं को जन्म दिया जिनके नाम सिनीवाली, कुहू, राका तथा अनुमति थे।

तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे ।
उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

तत्—उसके; पुत्रौ—दो पुत्र; अपरौ—अन्य; आस्ताम्—उत्पन्न हुए; ख्यातौ—प्रसिद्ध; स्वारोचिषे—स्वारोचिष युग में; अन्तरे—मनु के; उतथ्यः—उतथ्य; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ब्रह्मिष्ठः च—आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत; बृहस्पतिः—बृहस्पति।

इन चार पुत्रियों के अतिरिक्त उसके दो पुत्र भी थे। उनमें से एक उतथ्य कहलाया और दूसरा महान् विद्वान बृहस्पति था।

पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ।
सोऽन्यजन्मनि दह्वाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

पुलस्त्यः—पुलस्त्य मुनि ने; अजनयत्—जन्म दिया; पत्न्याम्—अपनी पत्नी से; अगस्त्यम्—अगस्त्य मुनि को; च—भी; हविर्भुवि—हविर्भुवि से; सः—वह (अगस्त्य); अन्य-जन्मनि—अगले जन्म में; दह्व-अग्निः—जठराग्नि; विश्रवाः—विश्रवा; च—तथा; महा-तपाः—तपस्या के कारण अत्यन्त बलशाली।

पुलस्त्य के उनकी पत्नी हविर्भू से अगस्त्य नाम का एक पुत्र हुआ, जो अपने अगले जन्म में दह्वाग्नि बना। इसके अतिरिक्त पुलस्त्य के एक अन्य महान् तथा साधु पुत्र हुआ जिसका नाम विश्रवा था।

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ।
रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; यक्ष-पतिः—यक्षों का राजा; देवः—देवता; कुबेरः—कुबेर; तु—और; इडविडा—इडविडा का; सुतः—पुत्र; रावणः—रावण; कुम्भकर्णः—कुम्भकर्ण; च—भी; तथा—इस प्रकार; अन्यस्याम्—अन्य से; विभीषणः—विभीषण।

विश्रवा के दो पत्नियाँ थीं। प्रथम पत्नी इडविडा थी जिससे समस्त यक्षों का स्वामी कुबेर उत्पन्न हुआ। दूसरी पत्नी का नाम केशिनी था जिससे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये थे—रावण, कुम्भकर्ण तथा विभीषण।

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ।
कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

पुलहस्य—पुलह की; गतिः—गति; भार्या—पत्नी; त्रीन्—तीन; असूत—जन्म दिया; सती—साध्वी; सुतान्—पुत्रों को; कर्म-श्रेष्ठम्—सकाम कर्म में अत्यन्त दक्ष; वरीयांसम्—अत्यन्त सम्माननीय; सहिष्णुम्—अत्यन्त सहनशील; च—भी; महा-मते—हे विदुर।

पुलह ऋषि की पत्नी गति ने तीन पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम थे—कर्मश्रेष्ठ, वरीयान तथा सहिष्णु। ये सभी महान् साधु थे।

तात्पर्य : पुलह की पत्नी गति कर्दम मुनि की पाँचवीं कन्या थी। वह अत्यन्त पतिव्रता थी और उसके सभी पुत्र पति के ही समान श्रेष्ठ थे।

क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ।
ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

क्रतोः—क्रतु मुनि का; अपि—भी; क्रिया—क्रिया; भार्या—पत्नी; वालखिल्यान्—वालखिल्य के ही समान; असूयत—उत्पन्न किया; ऋषीन्—साधु, ऋषि; षष्टि—साठ; सहस्राणि—हजार; ज्वलतः—अत्यन्त देदीप्यमान; ब्रह्म-तेजसा—ब्रह्मतेज के प्रभाव से।

क्रतु की पत्नी क्रिया ने वालखिल्यादि नामक साठ हजार ऋषियों को जन्म दिया। ये ऋषि ब्रह्म (आध्यात्मिक) ज्ञान में बढ़े-चढ़े थे और उनका शरीर ऐसे ज्ञान से देदीप्यमान था।

तात्पर्य : क्रिया कर्दम मुनि की छठी पुत्री थी। उसने साठ हजार ऋषियों को जन्म दिया जिन्हें वालखिल्य कहा जाता है, क्योंकि वे गृहस्थ जीवन त्याग कर वानप्रस्थ हो गये थे।

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परन्तप ।

चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

ऊर्जायाम्—ऊर्जा से; जज्ञिरे—जन्म लिया; पुत्राः—पुत्र; वसिष्ठस्य—वसिष्ठ मुनि की; परन्तप—हे महान; चित्रकेतु—चित्रकेतु; प्रधानाः—आदि; ते—सब पुत्र; सप्त—सात; ब्रह्म-ऋषयः—ब्रह्मज्ञानी ऋषि; अमलाः—निर्मल।

वसिष्ठ मुनि की पत्नी ऊर्जा से, जिसे कभी-कभी अरुन्धती भी कहा जाता है, चित्रकेतु इत्यादि सात विशुद्ध ऋषि उत्पन्न हुए।

चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ।
उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान्शक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

चित्रकेतुः—चित्रकेतु; सुरोचिः च—तथा सुरोचि; विरजाः—विरजा; मित्रः—मित्र; एव—भी; च—तथा; उल्बणः—उल्बण; वसुभृद्यानः—वसुभृद्यान; द्युमान्—द्युमान; शक्ति-आदयः—शक्ति इत्यादि पुत्र; अपरे—उसकी अन्य पत्नी से।

इन सातों ऋषियों के नाम इस प्रकार हैं—चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान तथा द्युमान। वसिष्ठ की दूसरी पत्नी से कुछ अन्य अत्यन्त सुयोग्य पुत्र हुए।

तात्पर्य : ऊर्जा को कभी-कभी अरुन्धती भी कहा जाता है और वह वसिष्ठ की पत्नी थी तथा कर्दम मुनि की नवीं कन्या थी।

चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ।
दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

चित्तिः—चित्ति; तु—भी; अथर्वणः—अथर्वा की; पत्नी—पत्नी; लेभे—प्राप्त हुआ; पुत्रम्—पुत्र; धृत-व्रतम्—व्रतधारी; दध्यञ्चम्—दध्यञ्च; अश्वशिरसम्—अश्वसिरा; भृगोः वंशम्—भृगु का वंश; निबोध—समझने का प्रयत्न करो; मे—मुझसे।

अथर्वा मुनि की पत्नी चित्ति ने अश्वशिरा नामक पुत्र को जन्म दिया, जो व्रतधारी होने के कारण दध्यञ्च कहलाया। अब तुम मुझसे भृगुमुनि के वंश के विषय में सुनो।

तात्पर्य : अथर्वा की पत्नी चित्ति का अन्य नाम शान्ति भी है। वह कर्दम मुनि की आठवीं कन्या थी।

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ।
धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

भृगुः—भृगुः; ख्यात्याम्—अपनी ख्याति नामक पत्नी से; महा-भागः—अत्यन्त भाग्यशाली; पत्न्याम्—पत्नी को; पुत्रान्—पुत्र; अजीजनत्—जन्म दिया; धातारम्—धाता; च—तथा; विधातारम्—विधाता; श्रियम्—श्री नामक एक कन्या; च भगवत्-पराम्—तथा भगवान् की परम भक्त, भगवत्परायणा।

भृगु मुनि अत्यधिक भाग्यशाली थे। उन्हें अपनी पत्नी ख्याति से दो पुत्र, धाता तथा विधाता और एक पुत्री, श्री, प्राप्त हुई; वह श्रीभगवान् के प्रति अत्यधिक परायण थी।

आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ।
ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥ ४४॥

शब्दार्थ

आयतिम्—आयति; नियतिम्—नियति; च एव—भी; सुते—कन्याएँ; मेरुः—मेरु मुनि; तयोः—उन दोनों को; अदात्—दे दिया; ताभ्याम्—उनमें से; तयोः—दोनों; अभवताम्—प्रकट हुए; मृकण्डः—मृकण्ड; प्राणः—प्राण; एव—निश्चय ही; च—तथा।

मेरु ऋषि के दो पुत्रियाँ थीं जिनके नाम आयति तथा नियति थे जिन्हें उन्होंने धाता तथा विधाता को दान दे दिया। आयति तथा नियति से मृकण्ड तथा प्राण नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए।

मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ।
कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

मार्कण्डेयः—मार्कण्डेय; मृकण्डस्य—मृकण्ड का; प्राणात्—प्राण से; वेदशिराः—वेदशिरा; मुनिः—परम साधु; कविः च—कवि नाम का; भार्गवः—भार्गव नाम का; यस्य—जिसका; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; उशना—शुक्राचार्य; सुतः—पुत्र।

मृकण्ड से मार्कण्डेय मुनि और प्राण से वेदशिरा ऋषि उत्पन्न हुए। वेदशिरा का पुत्र उशना (शुक्राचार्य) था, जो कवि भी कहलाता है। इस प्रकार कवि भी भृगुवंशी था।

त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् ।
एष कर्दमदौहित्रसन्तानः कथितस्तव ॥ ४६॥
शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ।
प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

ते—वे; एते—समस्त; मुनयः—मुनिगण; क्षत्तः—हे विदुर; लोकान्—तीनों लोक; सर्गैः—अपनी सन्तानों सहित; अभावयन्—परिपूरित किया; एषः—यह; कर्दम—कर्दम मुनि का; दौहित्र—नाती; सन्तानः—सन्तान; कथितः—पहले कहा जा चुका; तव—तुमको; शृण्वतः—सुनते हुए; श्रद्दधानस्य—श्रद्धालु का; सद्यः—शीघ्र; पाप-हरः—समस्त पापकर्मों को कम करके; परः—महान; प्रसूतिम्—प्रसूति; मानवीम्—मनु की पुत्री ने; दक्षः—राजा दक्ष से; उपयेमे—विवाह किया; हि—निश्चय ही; अज-आत्मजः—ब्रह्मा का पुत्र।

हे विदुर, इस प्रकार इन मुनियों तथा कर्दम की पुत्रियों की सन्तानों से विश्व की जनसंख्या

बढ़ी। जो कोई श्रद्धापूर्वक इस वंश के आख्यान को सुनता है, वह समस्त पाप-बन्धनों से छूट जाता है। मनु की अन्य कन्याओं में से प्रसूति ने ब्रह्मा के पुत्र दक्ष से विवाह किया।

तस्यां ससर्ज दुहितृः षोडशामललोचनाः ।
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसको; ससर्ज—उत्पन्न किया; दुहितृः—कन्याएँ; षोडश—सोलह; अमल-लोचनाः—कमल जैसे नेत्रों वाली; त्रयोदश—तेरह; अदात्—दिया; धर्माय—धर्म को; तथा—उसी तरह; एकाम्—एक पुत्री; अग्नये—अग्नि को; विभुः—दक्ष ने।

दक्ष ने अपनी पत्नी प्रसूति से सोलह कमलनयनी सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न कीं। इन सोलह कन्याओं में से तेरह धर्म को और एक अग्नि को पत्नी रूप में प्रदान की गईं।

पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ।
श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ ४९ ॥
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ।
श्रद्धासूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥ ५० ॥
शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ।
योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ ५१ ॥
मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ।
मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

पितृभ्यः—पितृगण को; एकाम्—एक पुत्री; युक्तेभ्यः—समस्त, संयुक्त; भवाय—शिवजी को; एकाम्—एक पुत्री; भव-छिदे—भौतिक बन्धन से छुड़ाने वाले; श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्तिः, तुष्टिः, पुष्टिः, क्रिया, उन्नतिः, बुद्धिः, मेधा, तितिक्षा, ह्रीः, मूर्तिः—ये दक्ष की तेरह कन्याओं के नाम हैं; धर्मस्य—धर्म की; पत्नयः—पत्नियाँ; श्रद्धा—श्रद्धा ने; असूत—जन्म दिया; शुभम्—शुभ; मैत्री—मैत्री; प्रसादम्—प्रसाद; अभयम्—अभय; दया—दया; शान्तिः—शान्ति; सुखम्—सुख; मुदम्—मुद; तुष्टिः—तुष्टि; स्मयम्—स्मय; पुष्टिः—पुष्टि; असूयत—जन्म दिया; योगम्—योग; क्रिया—क्रिया; उन्नतिः—उन्नति; दर्पम्—दर्प; अर्थम्—अर्थ; बुद्धिः—बुद्धि; असूयत—उत्पन्न किया; मेधा—मेधा; स्मृतिम्—स्मृति; तितिक्षा—तितिक्षा; तु—भी; क्षेमम्—क्षेम; ह्रीः—ह्री; प्रश्रयम्—प्रश्रय; सुतम्—पुत्र; मूर्तिः—मूर्ति; सर्व-गुण—समस्त अच्छे गुणों का; उत्पत्तिः—आगार; नर-नारायणौ—नर तथा नारायण; ऋषी—दो ऋषि।

शेष दो कन्याओं में से एक पितृलोक को दान दे दी गई, जहाँ वह प्रेमपूर्वक रह रही है और दूसरी कन्या भवबंधन से समस्त पापियों के उद्धारक शिवजी को दी गई। दक्ष ने धर्म को जिन तेरह कन्याओं को दिया उनके नाम थे : श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री तथा मूर्ति। इन तेरहों ने पुत्रों को जन्म दिया, जो इस प्रकार हैं—श्रद्धा

ने शुभ, मैत्री ने प्रसाद, दया ने अभय, शान्ति ने सुख, तुष्टि ने मुद, पुष्टि ने स्मय, क्रिया ने योग, उन्नति ने दर्प, बुद्धि ने अर्थ, मेधा ने स्मृति, तितिक्षा ने क्षेम तथा ह्री ने प्रश्रय को जन्म दिया। समस्त गुणों की खान मूर्ति ने नर-नारायण को जन्म दिया, जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ।
मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

ययोः—जिनमें से दोनों (नर तथा नारायण); जन्मनि—जन्म लेने पर; अदः—वह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; अभ्यनन्दत्—आनन्दित हुआ; सु-निर्वृतम्—खुशी से पूर्ण; मनांसि—प्रत्येक का मन; ककुभः—दिशाएँ; वाताः—वायु; प्रसेदुः—प्रसन्न हुए; सरितः—नदियाँ; अद्रयः—पर्वत।

नर-नारायण के जन्म के अवसर पर समस्त विश्व आनन्दित था। प्रत्येक का मन शान्त था और इस प्रकार समस्त दिशाओं में वायु, नदियाँ तथा पर्वत मनोहर लगने लगे।

दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ।
मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ॥ ५४ ॥
नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् ।
देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

दिवि—स्वर्गलोक में; अवाद्यन्त—बज उठे; तूर्याणि—तुरही; पेतुः—वर्षा की; कुसुम—फूलों की; वृष्टयः—वर्षा; मुनयः—मुनिगण ने; तुष्टुवुः—वैदिक स्तुतियाँ पढ़ीं; तुष्टाः—प्रसन्न; जगुः—गाने लगे; गन्धर्व—गन्धर्वगण; किन्नराः—किन्नरगण; नृत्यन्ति स्म—नाचने लगे; स्त्रियः—अप्सराएँ; देव्यः—स्वर्गलोक की; आसीत्—दृष्टिगोचर हो रह थे; परम-मङ्गलम्—परम मंगल; देवाः—देवतागण; ब्रह्म-आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य; सर्वे—सबों ने; उपतस्थुः—पूजा की; अभिष्टवैः—प्रार्थनाओं से, स्तोत्रों से।

स्वर्गलोक में बाजे बजने लगे और आकाश से पुष्प बरसने लगे। प्रसन्न मुनि वैदिक स्तुतियों का उच्चारण करने लगे। गंधर्व तथा किन्नर लोक के वासी गाने लगे और स्वर्ग की अप्सराएँ नाचने लगीं। इस प्रकार नर-नारायण के जन्म के समय सभी मंगलसूचक चिह्न दिखाई पड़ने लगे। उसी समय ब्रह्मादि महान् देवों ने भी सादर स्तुतियाँ अर्पित कीं।

देवा ऊचुः
यो मायया विरचितं निजयात्मनीदं
खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाद्य

प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

देवाः—देवताओं ने; ऊचुः—कहा; यः—जो; मायया—बहिरंगा शक्ति द्वारा; विरचितम्—उत्पन्न; निजया—स्वतः; आत्मनि—भगवान् में स्थित; इदम्—यह; खे—आकाश में; रूप-भेदम्—बादल-समूह; इव—सदृश, मानो; तत्—उसका; प्रतिचक्षणाय—प्रकट होने के लिए; एतेन—इसके साथ; धर्म-सदने—धर्म के घर में; ऋषि-मूर्तिना—ऋषि के रूप द्वारा; अद्य—आज; प्रादुश्चकार—प्रकट हुआ; पुरुषाय—श्रीभगवान् को; नमः—नमस्कार है; परस्मै—परम।

देवताओं ने कहा : हम उस दिव्य रूप भगवान् को नमस्कार करते हैं जिन्होंने इस दृश्य जगत की सृष्टि अपनी बहिरंगा शक्ति के रूप में की है, जो उनमें उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार वायु तथा बादल आकाश में रहते हैं और जो अब धर्म के घर में नर-नारायण ऋषि के रूप में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : भगवान् का विराट रूप यह दृश्य जगत है, जो श्रीभगवान् की बहिरंगा शक्ति का प्रदर्शन है। आकाश में असंख्य विविध प्रकार के लोक हैं और वायु भी है; वायु में विविधरंगी बादल रहते हैं और कभी-कभी हम एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़ते विमान भी देखते हैं। इस प्रकार यह दृश्य जगत विविधता से पूर्ण है, किन्तु वास्तव में यह विविधता परमेश्वर की बहिरंगा शक्ति का प्रदर्शन है और यह शक्ति उन्हीं में स्थित है। अपनी शक्ति को प्रकट करने के बाद अब भगवान् स्वयं अपनी ही शक्ति की सृष्टि के अन्तर्गत प्रकट हुए हैं, जो एक ही समय उनसे अभिन्न है तथा भिन्न भी हैं; अतः देवताओं ने अनेक रूपों में प्रकट होने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार किया। कुछ अद्वैतवादी दार्शनिक अपने निर्गुण चिन्तन के कारण इन रूपों को मिथ्या मानते हैं। इस श्लोक में विशेष रूप से यह कहा गया है—*यो मायया विरचितम्।* यह सूचित करता है कि ये रूप श्रीभगवान् की शक्ति के प्रकटीकरण (सारूप्य) हैं। इस प्रकार शक्ति के भगवान् से अभिन्न होने के कारण ये रूप वास्तविक हैं। भौतिक रूप क्षणिक भले हों, किन्तु मिथ्या नहीं हैं। वे आत्मरूपों के प्रतिबिम्ब हैं। यहाँ पर प्रयुक्त *प्रतिचक्षणाय* शब्द, जिसका अर्थ है "वे रूप (किस्में) हैं" श्रीभगवान् का यश घोषित करता है, जो नर-नारायण के रूप में प्रकट हुए हैं और जो भौतिक प्रकृति के समस्त रूपों के मूल हैं।

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्
सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन

यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपतारविन्दम् ॥ ५७॥

शब्दार्थ

सः—वह; अयम्—यह (भगवान्); स्थिति—उत्पन्न जगत का; व्यतिकर—आपत्तियाँ; उपशमाय—शमन हेतु; सृष्टान्—सर्जित; सत्त्वेन—सत्तोगुण से; नः—हम; सुर-गणान्—देवताओं को; अनुमेय-तत्त्वः—वेदों द्वारा ज्ञेय; दृश्यात्—दृष्टिपात से; अदभ्र-करुणेन—दयालु, करुणा से युक्त; विलोकनेन—चितवन से; यत्—जो; श्री-निकेतम्—धन की देवी का घर; अमलम्—निर्मल; क्षिपत—से बढ़कर; अरविन्दम्—कमल।

वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान्, जो वास्तविक रूप से प्रामाणिक वैदिक साहित्य द्वारा जाने जाते हैं और जिन्होंने सृष्ट जगत की समस्त विपत्तियों को विनष्ट करने के लिए शान्ति तथा समृद्धि का सृजन किया है, हम देवताओं पर कृपापूर्ण दृष्टिपात करें। उनकी कृपापूर्ण चितवन लक्ष्मी के आसन निर्मल कमल की शोभा को मात करने वाली है।

तात्पर्य : दृश्य जगत के मूल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् भौतिक प्रकृति की विचित्र क्रियाओं से आच्छादित हैं जिस प्रकार बाह्य आकाश अथवा सूर्य और चन्द्रमा का प्रकाश बादलों या रजकणों से आच्छादित हो जाता है। दृश्य जगत के मूल को ढूँढ पाना दुष्कर है, अतः भौतिक विज्ञानी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्त जगत का परम कारण प्रकृति है। किन्तु शास्त्रों अथवा *भगवद्गीता* तथा अन्य प्रामाणिक वैदिक धर्मग्रन्थों से हम यह जानते हैं कि इस विचित्र दृश्य जगत के पीछे श्रीभगवान् का हाथ है और दृश्य जगत के नियमों को बनाये रखने तथा सतोगुणमय व्यक्तियों के नेत्रों में दिखाई पड़ने के लिए भगवान् अवतरित होते हैं। वे इस दृश्य जगत की सृष्टि और लय के कारण हैं। इसीलिए देवतागण उनकी दयादृष्टि चाहते थे जिससे उन्हें आशीर्वाद मिल सके।

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ।
लब्धावलोकैर्ययतुर्रचितौ गन्धमादनम् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सुर-गणैः—देवताओं द्वारा; तात—हे विदुर!; भगवन्तौ—श्रीभगवान्; अभिष्टुतौ—प्रशंसित होकर; लब्ध—प्राप्त कर; अवलोकैः—चितवन (कृपा की); ययतुः—चले गये; अर्चितौ—पूजित होकर; गन्ध-मादनम्—गन्धमादन पर्वत को।

[मैत्रेय ने कहा :] हे विदुर, इस प्रकार देवताओं ने नर-नारायण मुनि के रूप में प्रकट श्रीभगवान् की पूजा की। भगवान् ने उन पर कृपा-दृष्टि डाली और फिर गन्धमादन पर्वत की ओर चले गये।

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ।
भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

तौ—दोनों; इमौ—ये; वै—निश्चय ही; भगवतः—श्रीभगवान् का; हरेः—हरि का; अंशौ—अंश रूप विस्तार; इह—यहाँ (इस ब्रह्माण्ड में); आगतौ—प्रकट हुआ है; भार-व्ययाय—भार हल्का करने के लिए; च—तथा; भुवः—जगत का; कृष्णौ—दो कृष्ण (कृष्ण तथा अर्जुन); यदु-कुरु-उद्वहौ—जो क्रमशः यदु तथा कुरु वंशों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

नर-नारायण ऋषि कृष्ण के अंश विस्तार हैं और अब जगत का भार उतारने के लिए यदु तथा कुरु वंशों में क्रमशः कृष्ण तथा अर्जुन के रूप में प्रकट हुए हैं।

तात्पर्य : नारायण तो श्रीभगवान् हैं, किन्तु नर श्रीभगवान् नारायण के अंश हैं। इस प्रकार शक्ति तथा शक्तिमान दोनों एकसाथ भगवान् हैं। मैत्रेय ने विदुर को बतलाया कि नारायण के अंश नर ने कुरु वंश में अवतार लिया है और कृष्ण के स्वांश नारायण कृष्ण अर्थात् पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के रूप में प्रकट हुए हैं जिससे दुखी मानवता का भौतिक बोझ से उद्धार हो सके। दूसरे शब्दों में, अब नारायण ऋषि जगत में कृष्ण तथा अर्जुन के रूप में विद्यमान थे।

स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ।
पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

स्वाहा—अग्नि की पत्नी, स्वाहा; अभिमानिनः—अग्नि का मुख्य विग्रह; च—तथा; अग्नेः—अग्नि से; आत्मजान्—पुत्रों को; त्रीन्—तीन; अजीजनत्—उत्पन्न किया; पावकम्—पावक; पवमानम् च—तथा पवमान; शुचिम् च—तथा शुचि; हुत-भोजनम्—यज्ञ की आहुति खाकर।

अग्निदेव की पत्नी स्वाहा से तीन संताने उत्पन्न हुई जिनके नाम पावक, पवमान तथा शुचि हैं, जो यज्ञ की अग्नि में डाली गई आहुतियों को खाने वाले हैं।

तात्पर्य : धर्म की तेरह पत्नियों का जो सभी दक्ष की कन्याएँ थीं, उनका वर्णन कर लेने के बाद मैत्रेय दक्ष की चौदहवीं कन्या स्वाहा तथा उसके तीन पुत्रों का वर्णन कर रहे हैं। यज्ञ की अग्नि में डाली गई आहुतियाँ देवों के निमित्त होती हैं और देवताओं की ओर से अग्नि तथा स्वाहा के तीनों पुत्र पावक, पवमान तथा शुचि आहुतियाँ स्वीकार करते हैं।

तेभ्योऽग्नयः समभवन्चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उनसे; अग्नयः—अग्निदेव; समभवन्—उत्पन्न हुए; चत्वारिंशत्—चालीस; च—तथा; पञ्च—पाँच; च—तथा; ते—वे; एव—निश्चय ही; एकोन-पञ्चाशत्—उञ्चास; साकम्—साथ में; पितृ-पितामहैः—पिता तथा पितामह के साथ।

इन तीनों पुत्रों से अन्य पैंतालीस सन्तानें उत्पन्न हुईं और वे भी अग्निदेव हैं। अतः अग्निदेवों की कुल संख्या उनके पिताओं तथा पितामह को मिलाकर उञ्चास है।

तात्पर्य : पितामह अग्नि है तथा पुत्र पावक, पवमान एवं शुचि हैं। इन चारों को तथा पैंतालीस पौत्रों को मिलाकर कुल उञ्चास भिन्न-भिन्न अग्निदेव हैं।

वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ।
आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

वैतानिके—आहुति डालना; कर्मणि—कर्म; यत्—अग्निदेवों का; नामभिः—नामों से; ब्रह्म-वादिभिः—निर्विशेषवादी ब्राह्मणों द्वारा; आग्नेय्यः—अग्नि के लिए; इष्टयः—यज्ञ; यज्ञे—यज्ञ में; निरूप्यन्ते—लक्ष्य हैं; अग्नयः—उञ्चास अग्निदेव; तु—लेकिन; ते—वे।

ब्रह्मवादी ब्राह्मणों द्वारा वैदिक यज्ञों में दी गई आहुतियों के भोक्ता ये ही उञ्चास अग्निदेव हैं।

तात्पर्य : निर्गुणवादी (वेदवादी) सकाम वैदिक यज्ञ करके विभिन्न अग्निदेवों की ओर आकृष्ट होते हैं और उनके नाम की आहुति देते हैं। इन उञ्चास अग्निदेवों का वर्णन इस प्रकार है।

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ।
साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

अग्निष्वात्ताः—अग्निष्वात्त; बर्हिषदः—बर्हिषद; सौम्याः—सौम्य; पितरः—पूर्वज, पितृगण; आज्यपाः—आज्यप; स-अग्नयः—जिनका साधन अग्नि सहित है; अनग्नयः—जिनका साधन अग्निरहित हैं; तेषाम्—उनकी; पत्नी—पत्नी; दाक्षायणी—दक्ष की कन्या; स्वधा—स्वधा।

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सौम्य तथा आज्यप—ये पितर हैं। वे या तो साग्निक हैं अथवा निरग्निक। इन समस्त पितरों की पत्नी स्वधा है, जो राजा दक्ष की पुत्री है।

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उनसे; दधार—उत्पन्न; कन्ये—कन्याएँ; द्वे—दो; वयुनाम्—वयुना; धारिणीम्—धारिणी; स्वधा—स्वधा; उभे—दोनों ही; ते—वे; ब्रह्म-वादिन्यौ—ब्रह्मवादिनी अथवा निर्गुणवादिनी; ज्ञान-विज्ञान-पार-गे—दिव्य तथा वैदिक ज्ञान में पारंगत।

पितरों को प्रदत्त स्वधा ने वयुना तथा धारिणी नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया। वे दोनों ही ब्रह्मवादिनी थीं तथा दिव्य एवं वैदिक ज्ञान में पारंगत थीं।

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ।
आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

भवस्य—भव की (शिव की); पत्नी—पत्नी; तु—लेकिन; सती—सती नामक; भवम्—भव को; देवम्—देवता; अनुव्रता—सेवा में श्रद्धापूर्वक संलग्न; आत्मनः—अपने ही; सदृशम्—समान; पुत्रम्—पुत्र; न लेभे—प्राप्त नहीं हुआ; गुण-शीलतः—अच्छे गुणों तथा चरित्र से।

सती नामक सोलहवीं कन्या भगवान् शिव की पत्नी थीं, किन्तु उनके कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, यद्यपि वे सदैव अपने पति की अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा में संलग्न रहने वाली थीं।

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ।
अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

पितरि—पिता के समान; अप्रतिरूपे—अनुपयुक्त; स्वे—अपने; भवाय—शिव को; अनागसे—निर्दोष; रुषा—क्रोध से; अप्रौढा—प्रौढ़ होने के पूर्व; एव—ही; आत्मना—अपने से; आत्मानम्—शरीर; अजहात्—त्याग दिया; योग-संयुता—योग से।

इसका कारण यह है कि सती के पिता दक्ष शिवजी के दोषरहित होने पर भी उनकी भर्त्सना करते रहते थे। फलतः परिपक्व आयु के पूर्व ही सती ने अपने शरीर को योगशक्ति से त्याग दिया था।

तात्पर्य : समस्त योगियों के प्रधान होते हुए भी शिवजी ने अपने लिए कोई आवास नहीं बनाया। सती एक महान् राजा दक्ष की सबसे छोटी पुत्री थीं और चूँकि सती ने शिव को अपने पति के रूप में चुना था, अतः राजा दक्ष अधिक प्रसन्न नहीं था। फलतः जब भी वह अपने पिता से मिलतीं, वह उनके पति की आलोचना करते, यद्यपि शिवजी निर्दोष थे। इस कारण से युवावस्था के पूर्व ही सती ने पिता दक्ष द्वारा प्रदत्त शरीर को त्याग दिया जिससे उसके कोई सन्तान न हो पाई।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत ''मनु की पुत्रियों की वंशावली'' नामक प्रथम अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।